पाठ–8

नदी, आस्था और कुम्भ

डॉ. श्रीराम परिहार

जन्म– 16 जनवरी, 1952

लेखक परिचय

आधुनिक ललित निबन्धकार डॉ. श्रीराम परिहार का जन्म मध्य प्रदेश के खण्डवा जिले के छोटे से गाँव फेफरिया में कृषक परिवार में हुआ। ''हिन्दी ललित निबन्ध : स्वरूप एवं परम्परा का अनुशीलन'' विषय पर आपने डी.लिट् पं. रविशंकर विश्व विद्यालय, रायपुर से कर ललित निबन्ध से अभिन्नता को प्रकट किया।

भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्यों को अपने निबन्धों का विषय बनाकर आधुनिक सन्दर्भों में उनकी उपादेयता को प्रतिष्ठित करने का श्लाघनीय प्रयास आपके ललित निबन्धों में प्राप्त होता है। सम्प्रति आप मध्य प्रदेश के माखनलाल चतुर्वेदी शासकीय स्नात्तकोत्तर कन्या महाविद्यालय, खण्डवा में प्राचार्य के पद पर कार्यरत रहते हुए ललित निबन्ध एवं नवगीत केन्द्रित अर्द्धवार्षिक पत्रिका 'अक्षत' का 1993 से सम्पादन और प्रकाशन कर रहे हैं।

कृतियाँ

आँच अलाव की, चौकस रहना है, अँधेरे में उम्मीद, कहे जन सिंगा, धूप का अवसाद, बजे तो वंशी, गूँजे तो शंख, ठिठके पल पाँखुरी पर, रचनात्मकता और उत्तर परम्परा, रसवंती बोलो तो, झरते फूल हर सिंगार के, हंसा कहो पुरातन बात, संस्कृति सलिला नर्मदा, निमाड़ी साहित्य का इतिहास, भय के बीच भरोसा, परम्परा का पुनराख्यान, ललित निबंध : स्वरूप एवं परम्परा, शब्द–शब्द झरते अर्थ ।

पाठ परिचय

'नदी, आस्था और कुम्भ' इस ललित निबंध में लेखक श्रीराम परिहार ने भारतीयता के शाश्वत मापदण्डों और परम्पराओं का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हुए स्नान, तीर्थ और आस्था का महत्त्व दर्शाया है। इसमें तीर्थों के विकास और वहाँ पर एकत्र लघु भारत की विशिष्टताओं के साथ वर्तमान में इनकी उपयोगिता एवं प्रासंगिकता को प्रतिष्ठित किया है।

डॉ. परिहार ने भारतीय संस्कृति में सर्वमान्य कई तीर्थ स्थलों की तथ्यात्मक जानकारी देकर आधुनिक तरुणाई को सांस्कृतिक स्थलों की जानकारी से समृद्ध भी किया है। निबन्ध में आधुनिकता के आवरण में भारतीय सांस्कृतिक तत्त्वों से विमुख हो रही पीढ़ी को इससे जुड़ने की प्रेरणा तर्क सहित सरस और प्रवाह शैली में प्रदान करना, लेखक का कौशल है। भौतिकता के पीछे अन्धी दौड़ में यह निबन्ध भारतीयता की ओर मन आकृष्ट करने में सफल रहा है।

नदी, आस्था और कुम्भ

साधु–संत तीरथ वासी, परकम्मा वासी, रोगी–भोगी जल में डुबकी लगा रहे हैं। जल धारा रूप में बह रहा है। बिना निमंत्रण मेला लगा है। ऊपर–ऊपर सब लोग अलग–अलग दिख रहे हैं। कई–कई वेश हैं। अपनी–अपनी भाषा–बानी है। स्तर छोटा–बड़ा है। चमक–दमक में फर्क है। सुविधाओं की मुँह देखी बातें हैं। लक्ष्मी का रुतबा पच्चीस–पचास, सौ– हजार लोगों को भीड़ में अलग ही छिटकता है। चेहरों की बनावट और रंगों की अपनी–अपनी पहचान है।

मुस्कान और तृप्ति का लहजा एक–सा है। श्रद्धा के ठाठ निराले महसूसने की हृदय–यात्रा सब में निरंतर है। बहते जल में स्नान कर तीर्थ बनने की नहीं, तीर्थ जानने–समझने की बारीक ललक आँखें खोल रही है। पश्चिमी सभ्यता व्यक्ति के ऊपर से उतर कर किनारे ढेर हैं। आदमी जल में है। आदमी प्रवाह में है। जल, प्रवाह और उसके विराट में आदमी स्वयं को छोड़ रहा है। विशाल–जनसमूह का नदी में नहाना–स्नान–पर्व हो रहा है। भीड़ चेहरा हीन होकर अनुभूति हो रही है। उधर कोई गा रहा है–

चलो रे भैया, चलिहै नरमदा के तीर
परब को दिन आयो।
गंगा नहाये, जमुना नहाये,
अब देखिहै मैया तेरो नीर,
परब को दिन आयो।

एक पार्टी कार्यकर्ता विधायक बनना चाहता है। विधायक मंत्री बनने की उधेड़बुन में है। मंत्री मुख्यमंत्री पद के सपने देखता है। मुख्यमंत्री प्रधानमंत्री बनाने के गुन्ताड़े में है। धरम–करम को तीर्थ–जल में फूलों की तरह छोड़ एक डुबकी, इन इच्छाओं की भी लगाता है। रोगी चाहता है– जल से बाहर निकलते ही देह कंचन हो जाये। गरीब–गुरबा दूर–दूर से चले आते हैं।

इस जनम में नहीं तो अगले जनम में कम से कम भर पेट भोजन और सिर पर छप्पर की जुगत हो जाये। कोई सोचता है बस यहीं से जाते ही कोरट–कचहरी के लफड़े निपट जाये। छात्र सोचता है कुछ अच्छे नम्बर पाने की हिकमत हाथ आ जाये। कई मिन्नतें करते हैं, 'हे नदी मैया, तेरा पानी बादलों के मार्फत इस बरस खेतों में दहपेल बरसे।' घाट पर दूर अकेले में जो डोकरी बैठी बहते जल को टकटकी बाँध कर देख रही है, बेटे–बहू ने घर से निकाल दिया है। जीवन से किचवा मरी है। चाहती है बस यहाँ से वापस नहीं जाना पड़े। नदी में स्नान निर्वाण हो जाये।

वह अधेड़ सा आदमी जाँघिया पहने घाट पर जंगल में रीछ की तरह घूम रहा है– अपने कैमरे में इस समय और उसके दृश्यों को बंद कर सब कुछ अपने घर ले जाकर एलबम में खोंस देना चाहता है। ये कार, हवाई जहाज, स्कूटर वाले लोग यहाँ पिकनिक–विकनिक सरीखा ही कुछ अनुभव कर रहे हैं। भीतर से नदी स्नान में बारीक सा कुछ नैतिक चिलक रहा है।

बाहर–बाहर व्यवहार आधुनिक होने का है। एक आदमी आँखों में भारत वर्ष को देखता है। उसमें लोगों, भीड़नुमा लोगों, समूहनुमा लोगों, एकीकृत लोगों, भावों के वृत्त में खड़े स्वाभाविक लोगों और कुल मिलाकर एक पर्व बनते लोगों को देखता है। वह इनमें मिल जाना चाहता है। वह जल की बूँद–बूँद में व्यक्ति की अस्मिता परखता है। वह नदी किनारे के जल–प्रवाह में देश के मौलिक करंट को महसूसता है।

आज हमारे सामने सबसे अहं सवाल यह है कि धर्म बड़ा है या राष्ट्र ? उत्तर में यह निर्विवाद तय होना चाहिये कि राष्ट्र बड़ा है। लेकिन साथ ही आस–पास यह भी देखना है कि राष्ट्र की मौलिक अवधारणायें क्या हैं? क्या मिट्टी पानी, नदी, पहाड़, राजा, प्रजा से ही राष्ट्र की मूर्ति बनती है? नहीं । राष्ट्र की सम्पूर्ण छवि और पूरा व्यक्तित्त्व हजारों वर्षों की मानवीय चेतना, जीवन के शाश्वत मूल्यों और अपने धरती–आकाश में अखण्ड विश्वास से बनती है। आदमी की वैज्ञानिक और मौलिक बुलन्दियों के साथ उसके सफर में और कुछ भी मुलायम सरीखा साथ रहा है। उसको कतरा–कतरा लेकर भी एक बनने की होशियारी सिखाता रहा है। लम्हा–लम्हा के बीच समय के अरसों को बटोरता रहा है।

मतलब कि उसकी नजर अपने से हटकर दूसरों पर पड़ती रही है। व्यक्ति को समूह में मिलाकर नये मनुष्य को बनाता रहा है। यह अपने को सब में मिलाकर देखने का भाव ही हिन्दुस्तान का मौलिक करंट है। नदी, घाटों पर भीड़ में मिलकर मात्र जज्बाती नहीं, व्यावहारिक भारत का स्वरूप खड़ा करना है।

एक तरह से अपने देश को असल रूप में समझना है। अपार मानव समूह घाटों पर सिर्फ प्रार्थना मुद्रा में नहीं होता । वह अपनी दृष्टि में जीवन के अलग–अलग रंगों को एक हिन्दुस्तानी इन्द्रधनुषी रंग में देखता है। इन रंगों में कौन प्रमुख है–नहीं कह सकते। साथ ही हर व्यक्ति अपने भीतरी इंसान को सबमें सब तक फैलाता है। सब में अपनापन तलाशता है। क्षेत्र, भाषा और बाहरी बेरीकेट्स को तोड़कर, बाहर–भीतर समभाव महसूस करता है। ऐसे ही क्षणों में वह नदी में डुबकी लगाकर स्वयं को महाप्रवाह में छोड़ देता है। हजारों–हजार बूँदों से हजारों हजार आदमियों से एक साथ मिल जाता है। गालिब के शब्दों में कहूँ तो ''इशरते कतरा है– दरिया में फना हो जाना।''

महापुरुषों की लीला भूमि और ऋषियों की तपो भूमि कालान्तर में तीर्थ रूप में विकसित हुई। इन दिनों ऋषि अपने शिष्यों तथा गायों के साथ घूमते रहते थे। नदियों के किनारे उन्हें अच्छे लगते थे। वहाँ रुकने की सुविधा थी। हरी–भरी धरती का खुला–खुला भाग उन्हें पड़ाव डालने के लिए रोकता था। ऐसी जगहों पर वे ठहर जाते थे। आसपास के लोग आकर उनसे मिलते थे। ऋषि की वाणी का सम्मान होता था। जीवन के अबूझ प्रसंगों की पर्तें खुलती थीं। छात्रों का अध्ययन और लोकशिक्षण एक साथ सम्पन्न होता था।

आज जो छोटे बड़े तीर्थ हैं, वे कभी ऋषियों के आश्रम और शिक्षा के केन्द्र रहे हैं। ज्ञान और तपस्या से प्राप्त प्राण–ऊर्जा से ऋषि, क्षेत्र विशेष को फूल की पवित्रता और जल की शीतलता देते

थे। इनके सम्पर्क से व्यक्ति को अपने–जीवन में नयी ताकत और नयी रोशनी मिलती थी। अगस्त्य ने वेदपुरी, नर–नारायण ने बदरीनाथ, अत्रि–अनुसूया ने चित्रकूट, विश्वामित्र ने सिद्धाश्रम, दत्तात्रेय ने गिरनार, ब्रह्मा ने पुष्कर और शिव ने कैलास को लोक–शिक्षण के महती उद्देश्य से भव्यता प्रदान की। राम–कृष्ण और अन्य अवतारों की लीला भूमि में युगान्तर में आस्थाओं से तीर्थों की स्थापना हुई। ये तीर्थ ईश्वर का 'भावना–शरीर' माने गये। वहाँ जाकर व्यक्ति शूद्रता को परे हटा अपने भीतर कहीं अच्छा टटोलता था। दरिया के पानी की ठंडक और पाकीज़ा माहौल में नहाकर वह घर लौटता था।

सिर्फ अटकलों के सहारे निष्कर्ष नहीं निकालें। हजारों वर्षों से खास बने हुए इन स्थलों के दर्शन पर गौर करें तो पायेंगे कि आत्मिक शान्ति पाने और उद्विग्नता का शमन करने में ये तीर्थ बहुत कारगर होते थे। समय–समय पर व्यक्ति वहाँ पहुँचकर साफ–सुथरे वातावरण में वास करता था। विशेष पर्वों पर सुविधानुसार लोग इकट्ठे होकर ऋषि–मुनियों के सान्निध्य का लाभ लेते थे।

उनके विचार–विमर्श और मेघा–मंथन से उपजे निष्कर्षों से जीवन की गुत्थियाँ सुलझाते थे। माघ महीने में त्रिवेणी तट पर एक मास रहकर मकर–संक्रान्ति स्नान करते थे। इसे 'कल्पवास' कहा गया है– 'एक मास भरि मकर नहाए' जीवन की झंझटों की समीक्षा उनसे दूर रहकर तीर्थवास के दौरान की जाती थी। अपने लोगों के मोह से दूर रहकर स्वयं को राग–द्वेष पर तौलते थे। दूसरे के गुणों को देखकर ग्रहण करने का मौका मिलता था।

साधनों के अभाव में पैदल यात्रा और चलते–चलते तीरथ कर आने के पीछे लोक– जीवन की शिक्षा, भावात्मक एकता, सांस्कृतिक चेतना का फैलाव तथा मानव धैर्य को सम्बोधित करने वाली आस्थाओं को सींचने का विचार खास तौर से रहा है।

इसी मकसद से बदरीनाथ, द्वारिकापुरी, रामेश्वरम् और जगन्नाथपुरी चार धामों की स्थापना हुई। काशी, कांची, मायापुरी, द्वारावती, अयोध्या, मथुरा और अवन्तिका सात पुरियों की पवित्रता कायम हुई। वाराणसी, गुप्तकाशी, उत्तरकाशी, दक्षिणकाशी और शिवकाशी, पाँच काशियाँ कहलायीं। गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी, कावेरी और सिन्धु सप्त नदियों से जलौध मग्ना भूमि को स्पष्ट देखा गया। कुरुक्षेत्र, हरिहर क्षेत्र, प्रभास क्षेत्र, रेणुका क्षेत्र, भृगुक्षेत्र, पुरुषोत्तम सरोवर, नारायण सरोवर, पम्पा सरोवर, पुष्कर सरोवर और मानस सरोवर के माध्यम से इस देश में व्यापक तीर्थ स्थापित हुए।

नदियों की परिक्रमा, चौरासी कोस की ब्रज–यात्रा और स्थान– स्थान की पंचकोशी यात्राएँ तीर्थ उपादान के रूप में विकसित हुईं। इन सभी को स्नान पर्व से जोड़ा गया। स्नान, आत्मा और शरीर दोनों का अंग बन गया। लोग जुटते थे। जुटकर भारत का नमूना बन जाते थे। बिखरा–बिखरा देश एक जगह छोटे रूप में ठोस बनकर दिखता था। ऐसे ही अवसरों पर ऋषि–मुनियों का मिलन–सम्मेलन होता था।

अपने समय के अनुसार शिक्षा, संस्कृति, स्वास्थ्य, विज्ञान और न्याय पर चर्चाएँ होती थीं। समाधान ढूँढे जाते थे। ज्ञान की नयी खोज होती थीं। कुम्भ पर्वों से धार्मिक सम्मेलनों और हिन्दुस्तान के

एक बड़े भ्रमण चक्र के पूरा होने की अवधारणा जुड़ी है। हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन, नासिक में प्रति तीन वर्ष में (प्रत्येक में 12 वर्ष में) लगने वाले कुम्भ व्यक्ति के जीवन में अमृत की तलाश की राह खोलते हैं। इन सबके केन्द्र में मनुष्य ही रहा है।

साधारण समस्याओं से लेकर गूढ़ रहस्यों की गाँठ खोलने का प्रयास और उज्ज्वल भविष्य का निर्माण ही इनका मकसद है। एक जमाना रहा होगा, जब इन पर्वों के बाद तीर्थों से व्यक्ति विश्रान्ति के बाद नयी क्षमता नयी दृष्टि नयी समझ और नयी आग के साथ अपने कर्म में लौटता होगा।

आर्थिक विकास ने जीवन में भौतिकता को जरूरत से ज्यादा महत्त्व दिया। पूरे सांस्कृतिक शोध को पुराना और पुराण पंथी करार देते हुए एक नासमझ समझ को आधुनिकता मान लिया। ऐसा इसलिए भी हुआ, क्योंकि जो लोग भारतीय सांस्कृतिक चेतना की गहराई में डुबकी लगाने का माद्दा रखते थे, इनके लिए आलोचना का मार्ग सुगम था।

आलोचना कर उसके बाजू से निकल जाना और अपनी अक्षमता को आधुनिकता के लेबल में जायज ठहराना एक फैशन बन गया। ज्ञान– बोध और अपनी मौलिकता के प्रति अधकचरी पीढ़ी ने यह काम हल्ला बोल की तर्ज पर किया। समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन की डींग भरने वालों ने बदलाव के उन सूत्रों की ओर कभी नहीं निहारा, जो इस देश की मिट्टी–पानी के अनुरूप बदलते सन्दर्भों में समाज की नयी संरचना करते।

विडंबना यह है कि स्वतंत्रता के साथ ही अपने देश का जो होच–पोच स्वरूप था, वह अभी भी है। हम अभी तक कोई एक सांस्कृतिक स्वरूप और जीवन का आदर्श रूप तय नहीं कर पाये। जबकि सच्चाई यह है कि देश, काल, वातावरण से परे होकर भी सच, सच ही रहेगा। आदर्श दो नहीं हो सकते। सत्य दो नहीं हो सकते। इनमें से राह खोजते और राह पकड़ते हुए लक्ष्य तो एक ही निर्धारित करना होगा। इन तीर्थों में बैठकर भारतीय मनीषा ने देश का लक्ष्य स्पष्ट किया था। जीवन का चरम खोजा था।

बड़े–बड़े बाँधों और विशाल औद्योगिक इकाइयों की स्थापना कर उन्हें स्वतंत्र भारत के आधुनिक तीर्थ कहा है। इन आधुनिक तीर्थों ने व्यक्ति की भौतिकवादी भूख में इज़ाफा किया है। उपभोक्तावादी संस्कृति कान फड़फडाने लगी है। वर्ग संघर्ष ने आँखें खोली है। कुछ फालतू लोगों को इसी बल पर रोटी सेकने और स्वार्थ सिद्धि के अवसर अनायास हाथ लग गये। अंधो के हाथों बटेर लग गयी। विकास की एक धारा नारेबाजी में तब्दील हो गयी। जो हमारा वास्तव में है वह छूटता चला गया।

जो नदी तीर्थ की प्रणेता थी, हमारी मेधा को निरंतर मांजती थी, जिसके किनारे बैठकर व्यक्ति–व्यक्ति के बीच की लकड़ी को दूर फेंकने की तरकीब खोजी जाती थी, वह नदी अब नहर बनकर खेत घर में आ गयी। विकास की दिशा में यह प्रगति है, लेकिन तीर्थ में जिस नदी में हर आदमी साथ–साथ सहज भाव से उजला होता था। सबमें फैलता था। अब वह नहर के पानी के लिए लड़ रहा है। मेरे खेत में सिंचाई हो जाय, इस नम्बर के छोर के अन्तिम व्यक्ति का खेत चाहे सूखा पड़ा रहे। समभाव और

समानता भाषणों और किताबों में सिमट गये। व्यक्ति को संयमित और सलीकेदार बनाने के हमारे पास कोई साँचे नहीं बचे। ऐसी दशा में तीर्थ–जल को न धार्मिक भाव से सही जिन्दा रहने की अनिवार्यता के रूप में अंगीकार करना होगा।

यह समझ व्यक्ति के पास समय के साथ आज विकृत रूप में आ गयी है। तीर्थों और नदी–घाटों पर लगने वाले मेलों–पर्वों का रूप बदल गया है। कितने लोग यहाँ जीवन को समझने लोक–शिक्षा लेने और देश–धरम को समझने आते हैं? तीर्थ, पर्यटन, स्थलों के रूप में विकसित होने लगे हैं। ये सरकार और स्थानीय निकायों की आमदनी का साधन बन गये हैं।

धर्म प्रचारकों के मंचों और पंडालो में प्रवचन और जीवन की शिक्षा के बजाय व्यक्ति तथा वस्तु प्रदर्शन होने लगा है। अपने को समझने और अपने अच्छे–बुरे पर विचार कर आगे की राह ढूँढने के स्थान पर विशिष्ट द्वार से भगवान के दर्शन करने की होड़ा–होड़ी लगी है। पर्व–स्नान के बाद स्वयं में परिवर्तन तलाशने की अपेक्षा सरकारी इंतजाम और मुहैया की गयी सुविधाओं पर घंटो चर्चा होती है। इलेक्ट्रोनिक मीडिया का जबरदस्त हस्तक्षेप कुंभ पर्वों, तीर्थ सम्मेलनों, साधु संतों की जमात और विचार–प्रसारणों में हुआ है। स्नान बाहर–बाहर ही हो रहा है। मन की भटकन कुछ ज्यादा ही बची रहती है।

आयातीत सोच, धार्मिक मंचों के गैर धार्मिक आलापों और धर्म स्थलों के सरकारीकरण के बावजूद लोग स्नान को पर्व बना रहे हैं। बिना आमंत्रण आ रहे हैं। ऊपर–ऊपर ही सही तीर्थ को आज की खिड़की से इतिहास में देख रहे हैं। पूरे आधुनिक होने के बाद कहीं भीतर कुछ अच्छा करने की दबिश में नदी के पानी में अपने को क्षण– दो–क्षण के लिए ही सही पूरे मन से छोड़ रहे हैं। बस इस अपार भीड़ के अनुशासित आचरण और नदी के प्रवाह में स्वयं को बूँद बनाकर प्रवाहित करने के भाव ने ही आदमी के भीतर भारतीयता और भारतीयता के भीतर मानव कल्याण को जिन्दा रखा है। साबुत रखा है।

शब्दार्थ

रुतबा– महत्त्व
महसूसने– अनुभव करना
कंचन– स्वर्ण, मूल्यवान
निर्वाण– मोक्ष
अस्मिता– स्वाभिमान
कतरा– अंश
पाकीज़ा– पवित्र
तृप्ति– संतोष
उधेड़बुन–सोच विचार
हिकमत–उपाय
चिलक– चमकना
निर्विवाद–विवाद रहित
फना– डूब जाना

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) कुम्भ मेला कितने वर्ष में आयोजित होता है?

(क) बारह (ख) तीन

(ग) सात (घ) पाँच

(2) गिरनार को किसने भव्यता प्रदान करायी?

(क) अगस्त्य (ख) अनुसूया

(ग) दत्तात्रेय (घ) ब्रह्मा

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

(3) कल्पवास किसे कहते है?

(4) निम्न को स्पष्ट कीजिए–

(i) चार धाम, (ii) सात पुरियाँ,

(iii) पाँच काशी, (iv) सप्त सिन्धु,

(v) पाँच सरोवर, (vi) पाँच क्षेत्र

लघूत्तरात्मक प्रश्न

(5) ''तीर्थ ईश्वर का भावना शरीर है'' इस कथन को स्पष्ट कीजिए ।

(6) ''तलाश की राह खोलते हैं'' कथन की सार्थकता में तर्क दीजिए।

(7) लेखक ने आधुनिक तीर्थ किसे कहा है? उनका समाज पर क्या प्रभाव पड़ा है?

(8) नदी और नहर का वैयक्तिक जीवन पर क्या भिन्न–भिन्न प्रभाव पड़ता है?

निबन्धात्मक प्रश्न

(9) ''ऊपर–ऊपर ही सही तीर्थ को आज की खिड़की से इतिहास में देख रहे है।'' कथन को पाठ के आधार पर समझाइए।

10 ''नदी किनारे के जल प्रवाह में देश के मौलिक स्टंट को महसूसता है।'' कथन के आधार पर स्नान और कुम्भ का महत्त्व स्पष्ट कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों की उत्तरमाला

1. क

2 ग